TEXT PROBLEM WITHIN THE BOOK ONLY

UNIVERSAL
LIBRARY
OU_182423
UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H81·6/B57A Accession No. G.H. 144

Author भटनागर, मोहेन्द्र ।

Title अभियान । 1954

This book should be returned on or before the date last marked below.

अभियान

कविता-संग्रह

समालोचनार्थ

महेन्द्र भटनागर

१९५४

आदर्श-विद्या-मंदिर प्रकाशन

३१, गौराकुन्ड, इन्दौर

प्रकाशक
श्री श्यामस्वरूप जैन
३१, गौराकुंड, इन्दौर (म. भा.)

सर्वाधिकारी लेखक

पहली-बार
दिसम्बर १९५४
प्रतियाँ १०००

मूल्य
डेढ़ रुपया

मुद्रक
कमलाकान्त प्रिन्टरी
३३, गौराकुन्ड, इन्दौर

कविताएँ

			पृष्ठ सं.
१	मशाल	...	६
२	बन्धन-मुक्त	...	११
३	कहाँ अवकाश ?	...	१३
४	ग्रीष्म	...	१५
५	मृत्यु-दीप	...	१७
६	वैषम्य	....	१६
७	पराजय	...	२१
८	व्यष्टि	....	२२
६	अंतर-ज्वाला	....	२४
१०	बेबसी	....	२६
११	प्रलय-संगीत	....	२८
१२	कवि	....	२६
१३	युग-कवि	...	३२
१४	संघर्ष	...	३३
१५	मेरी आहें	....	३५

		पृष्ठ सं.
१६	चेतना ...	३७
१७	तरुण ..	३८
१८	नारी ...	४०
१९	देश-दीपक ...	४२
२०	बलिया ...	४५
२१	प्रभंजन ..	४८
२२	परिवर्तन हो ! ...	५१
२३	नया सवेरा	५३
२४	साधक ...	५५
२५	तुलसीदास (१) ..	५७
२६	तुलसीदास (२)	६०
२७	प्रेमचन्द ...	६२
२८	गाँधी (१)	६५
२९	गाँधी (२)	६७
३०	गाँधी (३) ...	६९
३१	गाँधी (४)	७१
३२	गाँधी (५) ..	७३
३३	मालवानां जयः ..	७४
३४	खेतहर ...	७७
३५	खेतों में	८१
३६	अभियान ...	८४

★

भूमिका

आज हमारे देश का ही क्यों संसार का सारा साहित्य एक उथलपुथल के युग से गुजर रहा है। बात यह है कि साहित्य में सब तरह के लोगों का मोर्चा लगा हुआ है, और सब उसे अपनी-अपनी तरफ घसीट रहे हैं। इसमें दलों का मोर्चा है, गुटों की इस्तेहारबाज़ी है तथा व्यक्तियों की अजीब-अजीब शक्ल के झंडों की फड़फड़ाहट है। १० वीं शती के व्यक्तिवाद की डफली पीटने वाले ऐसे लोग भी हैं जिनके अनुयायिओं के नाम पर केवल वे स्वयं ही हैं। इससे जहाँ साहित्य में जीवन महा-सागर की सारी लहरें दीख पड़ रही हैं, वहीं अखाड़ा बन जाने के कारण इसमें धूल भी बहुत उड़ रही है। पाठकों तथा प्रशंसकों के लिये शेषोक्त परिस्थिति हर समय रुचिकर ही होती है ऐसा

नहीं कहा जा सकता, इसलिये कोई छींक रहा है तो कोई नाक पर रूमाल रखकर अपनी रक्षा कर रहा है। हड़बोंग और धकापेल मची हुई है। मान्यताओं का या तो नामलेवा और पानीदेवा कोई नहीं है, या यों कह लीजिये कि सब की मान्यता अलग-अगल है।

इस धमाचौकड़ी और कोलाहल का सबसे अधिक अवसर हिन्दी क्षेत्र में कविता पर पड़ रहा है। कहीं कोई झंडा उठ रहा है, तो कहीं कुछ नारा बुलन्द हो रहा है। जाने कितने वाद खड़े किये जा रहे हैं। कुछ की जड़ें हिन्दी में हैं, कुछ की उनके बाहर के साहित्यों में, और कुछ की जड़ें कहीं भी नहीं यहाँ तक कि उनके प्रवर्तकों के मन में भी नहीं। त्रिशंकुबहुल कविता साहित्य में जड़ के सम्बन्ध में कौतूहल दिखाना उसी प्रकार से वर्जित है जैसे दोगलों के समाज में पिता का पता पूछना।

पहले कविता की जो विशेषतायें बताई जाती थीं, अब उनमें से शायद एक ही बची, वह यह कि कविता सीढ़ीदार ढंग से लहराकर लिखी जाती है, बाकी रिद्म का जहाँ तक दावा है, अच्छा पढ़ने या गाने वाला किसी भी प्रकार की रचना में रिद्म पैदा कर सकता है। इतना सब कह सुन लेने पर भी नई कविता एक हद तक अपनी सार्थकता सिद्ध कर चुकी है, पर उसमें से कितनी स्थायी है, कितनी अस्थायी, और यदि सारी ही अस्थायी है तो वह मरते मरते विरासत में हिन्दी कविता को क्या कुछ दे जायगी, यह कहना बहुत कठिन है।

गद्य के मुकाबले में पद्य में बाहरी रूप महत्वपूर्ण होता है। मोलियेर के एक पात्र को अधिक उम्र में पता लगा कि वह अब तक सारी उम्र गद्य बोलता रहा है, केवल मोलियर के एक पात्र को क्यों यह अनुभव सब को हो सकता है, पर पद्य के सम्बन्ध में यह अनुभव बड़े से बड़े कवि को भी नहीं हो सकता। दूसरे शब्दों में कविता एक हद तक कृत्रिम है, पर यह कृत्रिमता उसकी कलात्मकता का वाहन भी है। इस कारण नये रूप तथा प्रयोग कविता के लिये स्वाभाविक हैं। फिर भी केवल बाह्य रूप को लेकर महान कविता चल नहीं सकती। अन्तर्गत वस्तु उसके लिये महत्वपूर्ण है।

श्री महेन्द्र भटनागर उन थोड़े से नये कवियों में हैं जिन को कविता की अन्तर्गत वस्तु के सम्बन्ध में चिन्ता रहती है। थोड़े समय में ही हिन्दी कविता के क्षेत्र में उन्होंने अपना स्थान बना लिया है। मुझे आशा है कि श्री महेन्द्र कविता के क्षेत्र में उत्तरोत्तर आगे बढ़ेंगे।

दिल्ली ८,

—मन्मथनाथ गुप्त

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१२	५	दुनियाँ	दुनिया
३२	२	वर्ग	वेग
३२	६	मै गाता	मैं तो गाता
४८	५	दश	देश
५६	२	ह	हैं
६०	१२	आर	और
६०	१२	मग्न	भग्न
७८	३	बामार	बीमार
७८	१३	का	की

महेन्द्र भटनागर

मेरी कविता

कविता लिखने की प्रेरणा मुझे सर्वप्रथम प्रकृति से मिली। सबलगढ़ नामक उत्तर मध्य-भारत के वनाच्छादित ग्राम में मैं खूब भटका हूँ। उस समय मैं सातवीं कक्षा में पढ़ता था। तभी से कविताएँ लिखने लगा। इन कविताओं के विषय जंगल, फूल, वर्षा, ऊषा आदि हुआ करते थे। प्रारम्भ की ये सभी कविताएँ अप्राप्य-सी ही हैं। सन् १९४१ से लिखने में कुछ प्रौढ़ता आई और तभी से मैं अपने साहित्यिक-जीवन का वास्तविक प्रारम्भ मानता हूँ।

मेरी प्रथम कृति 'तारों के गीत' (रचना-काल १९४१-४२) है तथा प्रकाशन की दृष्टि से भी यह मेरी पहली पुस्तक है। कॉलिज के अर्थशास्त्र और भूगोल के अध्ययन ने मुझे प्रकृति के क्षेत्र से मानवी धरातल पर ला खड़ा किया। उस समय द्वितीय-महायुद्ध और भारतीय-स्वाधीनता-संग्राम अपनी चरम-सीमा पर थे—जिनका भावात्मक प्रभाव मेरे मन पर बड़ा गहरा पड़ा। यह असम्भव था कि उसकी अभिव्यक्ति मेरे काव्य में न होती। अभिव्यक्ति-मात्र ही नहीं वरन् इन घटनाओं ने मेरे कवि-व्यक्तित्व को ही एकदम नई दिशा में मोड़ दिया। राष्ट्रीय परम्परा को अपनाकर, कविता के द्वारा, मैं राष्ट्र-उद्बोधन के कार्य की ओर उन्मुख हुआ। गाँधीजी राष्ट्रीय आन्दालनों का नेतृत्व कर रहे थे; एतदर्थ मैं उनसे प्रभावित था; और आज भी उनकी नैतिकता का कायल हूँ। पर, राजनीति विषयक मेरा ज्ञान कुछ न था और न आज ही कुछ है। राजनीति से मेरा भावात्मक सम्बन्ध ही कहा जा सकता है। विभिन्न राजनीतिक मतवादों का, ढंग से मैंने अध्ययन कभी नहीं किया और न मैं किसी राजनीतिक-पार्टी का सदस्य ही कभी रहा। राजनीति जब साधारण जनता के जीवन को प्रभावित करती है तब उससे विलग भी नहीं रहा जा सकता; अतः राजनैतिक चेतना से मैं अपने को न बचा सका। मुझ जैसे निम्न-मध्यम-वर्गीय व्यक्ति का उससे बचना असम्भव भी था। इसी बीच वामपक्षी विचार धारा से भी मेरा

परिचय हुआ। 'विप्लव' और बाद में 'लोकयुद्ध' का मैं नियमित पाठक रहा। परिवार की विकट आर्थिक परिस्थितियों के बीच जब मैं ऐसे विचारों के सम्पर्क में आया तो मुझे उनमें अपने मन की बात मिल गई। जो मैं सोचता था वह लोग पहले ही सोच चुके थे—उन विचारों को ग्रंथ-बद्ध कर चुके थे; एतदर्थ यह वैचारिक साम्य पाकर मुझे बड़ा सन्तोष मिला—और मैं वाम-पक्षी गतिविधियों में रुचि लेने लगा। सन् १९४२ का देश व्यापी आन्दोलन, बंगाल का अकाल, आजाद हिंद फौज का अभियान आदि ऐसी घटनाएँ हैं जिनका जन-साधारण के मन पर प्रभाव पड़ना अनिवार्य था। इस प्रभाव का राजनीति से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है। कोई भी भावुक व्यक्ति जिसके हृदय में देश तथा मानवता के प्रति प्रेम है अपने को इन घटनाओं से अछूता नहीं रख सकता। मैं प्रभावित था; अतः मैंने इन विषयों पर लिखा। 'अभियान' और 'बदलता युग' में इस समय की अनेक रचनाएँ संग्रहीत हैं।

मेरी सबसे पहली कविता 'हुंकार' मार्च सन् १९४४ के 'विशाल-भारत' में छपी थी—जो 'टूटती शृंखलाएँ' में संग्रहीत है। तत्पश्चात् मैं हिन्दी के अनेक पत्रों में लिखने लगा। 'टूटती-शृंखलाएँ' का रचना-काल सन् १९४४-४८ का है। इस बीच मैं व्यक्तिगत अनुभूतियों पर आश्रित गीत भी लिखता रहा—जिनमें मेरे पूर्व प्रकृति-प्रेम की भावनाएँ भी सजग हो उठी हैं। कभी-

कभी जब मन अशांत रहता है तब इन गीतों का सृजन अनायास हो जाता है और तब सारी बौद्धिक-मान्यताएँ न जाने कहाँ चली जाती हैं। ये गीत 'अन्तराल', 'चाँद, मेरे प्यार !' आदि पुस्तकों में संग्रहीत हैं--जो मुझे आज भी प्रिय हैं।

सन् १९४५ में बी. ए. की परीक्षा उत्तीर्ण करके मुझे नौकरी करनी पड़ी और इस प्रकार मैं उज्जैन के एक विद्यालय में भूगोल का अध्यापक हो गया। भारत की स्वाधीनता के साथ साम्प्रदायिक-दंगे शुरू हो गए थे। इलाहाबाद में सफ़र के समय, एक बार मैं सुनसान में घिर गया था- राम-राम करके स्टेशन पकड़ा और थोड़ी देर बाद ही किसीने समाचार दिया कि जिस रास्ते से मैं आया था छुरेबाजी की वारदातें हो गईं। कितना बुरा समय था वह ! तिस पर मालवा में अकाल पड़ा। गेहूँ नहीं मिलता था। चावल बहुत मँहगा था। जौ-चने मुश्किल से मिलते थे और बाद में तो मूँग की दाल के चीलों और पकौड़ियों पर दिन काटने पड़े। इस जीवन में मुझे बड़े कटु अनुभव हुए। एक विद्यालय के अध्यापक की यह ज़िन्दगी थी- कल्पना कीजिए, गरीब जनता को कितनी मुसीबतों का सामना करना पड़ा होगा ! राशन की दूकानें लुट जाया करती थीं— लाठी चार्ज होते-होते बचता था और इस समय सेठ मस्त होकर घूमते थे। यह उनके धन कमाने का समय था ! अभिप्राय यह है कि ये सारी घटनाएँ एक-के-बाद-एक मेरे मन में मौजूदा

समाज-व्यवस्था के प्रति आक्रोश का भाव भरती गई। 'बदलता-युग' में जो कविताएँ संग्रहीत हैं वे इसी मनःस्थिति में लिखी गई हैं।

हिन्दी-कविता आज विभिन्न रूपों में दिखाई दे रही है। कविता के दो महत्वपूर्ण पक्ष होते हैं—एक विचार-विश्वासगत और दूसरा शिल्पगत। दोनों में एक की भी उपेक्षा नहीं की जा सकती। कवि अपने विचारों और विश्वासों की आधार-शिला पर ही काव्य-रचना करता है—शिल्प के द्वारा उसकी कृति निखर उठती है। जिस तरह कोरी कलात्मक नक्काशी से आदमी के मन को तृप्ति नहीं मिल सकती उसी प्रकार विचारों और विश्वासों को बिना शिल्प के काव्य में व्यक्त कर देने मात्र से मनुष्य प्रभावित नहीं हो सकता। इस तरह की अभिव्यक्ति का सहज माध्यम गद्य ही हो सकता है। कविता तो कला की अनिवार्य अपेक्षा रखती है। लेकिन कला का उपयोग तो कोई भी कर सकता है—हिंसा को उत्तेजना देने वाली कविताएँ, अश्लील और कामोत्तेजक कविताएँ, पूँजीवाद-साम्राज्यवाद आदि को बल पहुँचाने वाली कविताएँ आदि सभी कला की दृष्टि से सुन्दर हो सकती हैं! यदि कवि कला को ही एकमात्र कसौटी मान ले तो वह लक्ष्य-भ्रष्ट और प्रतिगामी हो सकता है। उसका वैचारिक दुनिया से भी वास्ता होना चाहिए और उसे अपने समय की अथवा कोई नवीन स्वस्थ प्रगतिशील विचार-धारा की

अभिव्यक्ति भी करनी चाहिए; तभी उसकी कला सार्थक है। यदि कवि के विश्वास तथा बौद्धिक मान्यताएँ स्पष्ट नहीं हैं तो वह मानव-जीवन को क्या दे सकता है?

प्रस्तुत संग्रह में मैंने केवल छत्तीस चुनी हुई कविताएँ रखी हैं—जो हंस, मजदूर-जगत, प्रवाह, मानवता, कर्मवीर, संगम आदि पत्र-पत्रिकाओं में समय-समय पर छप चुकी हैं। इधर मैंने उनमें कुछ परिवर्तन अवश्य कर दिए हैं। 'अभियान' का रचनाकाल सन् १९४२—४३ का और उसके बाद '४९ तक का है। मेरे काव्य का मूल्यांकन तो साहित्य-समीक्षक तथा पाठक ही करेंगे—यदि मुझे कुछ सुझाव दिए गए तो मैं उनका स्वागत करूँगा।

धार,
१५ अगस्त १९५४

महेन्द्र भटनागर

अभियान

मशाल

बिखर गए हैं ज़िन्दगी के तार-तार !
रुद्ध-द्वार, बद्ध हैं चरण,
खुल नहीं रहे नयन;
क्योंकि कर रहा है व्यंग्य
बार-बार देखकर गगन !
भंग राग - लय सभी
बुझ रही है ज़िन्दगी की आग भी !
आ रहा है दौड़ता हुआ
अपार अंधकार !
आज तो बरस रहा है विश्व में
धुआँ, धुआँ !

★ ★ ★

शक्ति लौह के समान ले
प्रहार सह सकेगा जो
जी सकेगा वह !
समाज वह—
एकता की शृंखला में बद्ध,
स्नेह-प्यार-भाव से हरा-भरा
लड़ सकेगा आँधियों से जूझ !

★ ★ ★

नवीन ज्योति की मशाल
आज तो गली-गली में जल रही,
अंधकार छिन्न हो रहा,
अधीर-त्रस्त विश्व को उबारने
अभ्रांत गूँजता अमोघ स्वर,
सरोष उठ रहा है बिम्ब में
मनुष्य का सशक्त सिर !

बंधन-मुक्त

बंधन से तुमको प्यार न हो !
बंदी शत-शत बंधन में यह
उगता अभिनव संसार न हो !
बंधन से तुमको प्यार न हो !

युग के सैनिक हो, क्रांति करो,
नव युग की बढ़कर सृष्टि करो,
मानवता के संताप - क्लेश,
पीड़ा, अभाव सब शीघ्र हरो,
बलिदानों की बलिवेदी पर
डरना तुम को स्वीकार न हो !
बंधन से तुमको प्यार न हो !

अगणित मानव सैनिक बन कर
आर्थिक हमले में कूद पड़ो,
प्राणों का रक्त बहाने को
युग-कवि ! गौरव का गान पढ़ो,
नूतन दुनियाँ में क्षण - भर भी
जन-जन का जीवन भार न हो !
बंधन से तुमको प्यार न हो !

फिर महाप्रलय के गर्जन से
वसुधा का अंतर कंपित हो,
पूँजी की ज़ंजीरों में बँध
अब और न जनता शोषित हो,
समता की दृढ़ तलवारों से
वैभव पर बंद प्रहार न हो !
बंधन से तुमको प्यार न हो !

यह दो युग का संधिस्थल है
संघर्ष छिड़ेगा वर्गों का,
सामाजिक-दर्शन बदलेगा
क्षय होगा स्थापित 'स्वर्गों' का,
दुःख कहीं तो एक ओर सुख
का बहता पारावार न हो !
बंधन से तुमको प्यार न हो !

कहाँ अवकाश ?

हमको कहाँ अवकाश है ?

जब मौत से हम लड़ रहे,
प्रतिक्षण प्रगति कर बढ़ रहे,
ये राह के कंटक सभी
लो धूल में अब गड़ रहे,
करना अँधेरे का हमें
बढ़कर अभी ही नाश है !
हमको कहाँ अवकाश है ?

हमने न देखे शूल भी,
हमने न देखी धूल भी,
हमने न देखे राह के
हँसते हुए मधु फूल भी,
हमने न जाना प्यार क्या
औ' मोह का क्या पाश ह !
हमको कहाँ अवकाश है ?

हम हैं नहीं जो कल रहे,
हम चाल अपनी चल रहे,
क्या हार में, क्या जीत में
हम एक से प्रतिपल रहे,
दुनिया बदलने के लिए
अभिनव अटल विश्वास है !
हमको कहाँ अवकाश है ?

ग्रीष्म

तपता अम्बर, तपती धरती
तपता रे जगती का कण-कण !

त्रस्त विरल सूखे खेतों पर
बरस रही है ज्वाला भारी,
चक्रवात, लू गरम-गरम से
झुलस रही है क्यारी-क्यारी,
चमक रहा सविता के फैले
प्रकाश से व्योम-अवनि-आँगन !
तपता अम्बर, तपती धरती
तपता रे जगती का कण-कण !

जर्जर कुटियों से दूर कहीं
सूखी घास लिए नर-नारी,
तपती देह लिए जाते हैं
जिनकी दुनियाँ न कभी हारी,
जग-पोषक स्वेद बहाता है
थकित चरण ले, बहते लोचन !
तपता अम्बर, तपती धरती
तपता रे जगती का कण-कण

भवनों में बंद किवाड़ किए
बिजली के पंखों के नीचे,
शीतल ख़स के परदे में जो
पड़े हुए हैं आँखें मींचे,
वे शोषक जलना क्या जानें
जिनके लिए खड़े सब साधन !
तपता अम्बर, तपती धरती
तपता रे जगती का कण-कण !

रोग-ग्रस्त, भूखे, अधनंगे,
दमित, तिरस्कृत शिशु दुर्बल,
रुग्ण दुखी गृहिणी जिसका क्षय
होता जाता यौवन अविरल,
तप्त दुपहरी में ढोते हैं
मिट्टी की डलियाँ, फटे चरण !
तपता अम्बर, तपती धरती
तपता रे जगती का कण-कण !

मृत्यु-दीप

कौन-से दीपक जले ये ?

विश्व में जब सनसनातीं
वेग से नाशक हवाएँ,
साथ जिनके आ रही हैं
हर मनुज-सर पर बलाएँ,
हो रहा जीवन-मरण का
खेल जब रक्तिम-धरा पर,
मिट रहे मानव अनेकों
घोर क्रन्दन का जगा स्वर,
त्रस्त-पीड़ित जब मनुजता
कौन से दीपक जले ये ?

युद्ध के बादल गगन में
भूख धरती पर खड़ी है,
सांध्य-जीवन की करुण तम
यह असह दुख की घड़ी है,
मृत्यु का त्योहार है क्या
विश्व-मरघट में जले जो,
स्नेह बिन बाती जलाकर
शून्य में रो-रो पले जो ?
प्रज्वलित हैं जब चिताएँ
कौन-से दीपक जले ये ?

वैषम्य

नभ में चाँद निकल आया है !
दुनिया ने अपने कामों से
पर, विश्राम नहीं पाया है !
नभ में चाँद निकल आया है !

कुछ यौवन के उन्मादों में
भोग रहे हैं जीवन का सुख
मदिरा के प्यालों की खन-खन
में उन्मत्त पड़े हैं हँसमुख,

वे कहते हैं, किसने इतना
जगती में सुख बरसाया है !
नभ में चाँद निकल आया है !

कुछ सूनी आहें ले दुख की
सौ-सौ आँसू आज गिराते,
हत-भाग्य समझकर जीवन का
अपने को ही दोषी ठहराते,
वे कहते हैं, जाने कितना
जग में दुख-राग समाया है !
नभ में चाँद निकल आया है !

पराजय

मिल रही है हार !

मनुज का व्यवहार क्या,
सभ्यता विस्तार क्या,
स्वार्थ की दुर्भावना से मिट रहा संसार !
मिल रही है हार !

ज्वार-पूरित पूर्ण सागर,
और नौका क्षीण जर्जर,
है बड़ा पागल मनुज जो तोड़ता पतवार !
मिल रही है हार !

खींचता प्रतिपल प्रलोभन,
मिट रहा है मुक्त-जीवन,
कह रहा, पर, छल भरे स्वर, 'आज नवयुग द्वार !
मिल रही है हार !

व्यष्टि

मैं केवल अपने सुख-दुख का
क्या गान करूँ ?

देव ! तुम्हारी जन-नगरी में
महानाश का तांडव नर्तन,
अगणित मनुजों की लाशों पर
क्रूर पिशाचों का पद-मर्दन,

अपने घावों का फिर मैं
क्या आख्यान करूँ ?
मैं केवल अपने सुख-दुख का
क्या गान करूँ ?

भय संस्कृति मिटने का प्रतिपल,
विश्व-सभ्यता पतनोन्मुख है;
अस्थिरता, उथल-पुथल जीवन,
आशंका प्रतिक्षण सम्मुख है,
फिर अपने ही टिक रहने का
क्या ध्यान करूँ ?
मैं केवल अपने सुख-दुख का
क्या गान करूँ ?

जिसने बंधन स्वयं बनाए
पग-पग पर घुटने टेक दिए,
या अपने ही हाथों बढ़कर
रक्ताप्लावित युग-प्राण किए,
उस मानव पर फिर मैं
कैसे अभिमान करूँ ?
मैं केवल अपने सुख-दुख का
क्या गान करूँ ?

अंतर-ज्वाला

अपने सुख को तजकर किसने
संघर्षों को सिर मोल लिया ?
किसने निस्वार्थ अभावों में
निज तन-मन-धन से योग दिया ?

यह दुनिया अपनी ही जड़ता
दुर्बलता से अनभिज्ञ रही
जिसने अपने को बिन सोचे
औरों की बातें खूब कहीं !

रोटी के टुकड़ों पर मानव
का सर्वस्व दिया है लुटने,
जिसने, प्रतिहिंसा की ज्वाला
में, लाखों शीश दिए कटने !

अनगिनती अभिलाषाओं के
पाने के अंध-प्रयासों में,
जिसने मानवता की परवा
छोड़ी अपने अभ्यासों में !

पशुता का आदिम रूप वही
उतरा है फिर से धरती पर
भीषण नर-संहार मचा है
गूँजा सामूहिक क्रन्दन-स्वर !

व्याकुलता जाग रही प्रतिक्षण
सम्पूर्ण विश्व के आँगन में,
धधक रही है अंतर-ज्वाला
नव-परिवर्तन की कण-कण में !

अब आने वाली है आँधी
कट जाएँगे जिससे बंधन,
अगणित शोषक-साम्राज्यों के
भू-लुंठित होंगे सिंहासन !

बेबसी

आज पड़े प्राणों के लाले !
धरती पर वैषम्य बड़ा है,
हर पथ पर हैवान खड़ा है,
घोर-निराशा के जीवन में आज घुमड़ते बादल काले !
आज पड़े प्राणों के लाले !

रोटी पर संघर्ष मचा है,
जिससे कोई भी न बचा है,
मानव, मानव से लड़ता है, ले भीषण हथियार निराले !
आज पड़े प्राणों के लाले !

अब जगती म आग लगेगी,
विद्रोही हुंकार जगेगी,
क्या अब वैभव रह पाएगा जीवित, उन घड़ियों को टाले ?
आज पड़े प्राणों के लाले !

इतिहास बने बलिदानों का,
उत्सर्ग करो निज प्राणों का,
पीड़ित मानवता की जय हित, ओ कवि ! प्रेरक गाने गाले !
आज पड़े प्राणों के लाले !

प्रलय-संगीत

आज तो हुंकार कर स्वर,
ज़ोर से ललकार कर स्वर,
जागरण-वीणा बजा, उन्मुक्त भैरव-राग से, मैं
गीत गाने को चला हूँ !

शीघ्र तोड़े बंधनों को,
तीव्र करदे धड़कनों को,
वेग से विप्लव मचाकर, सृष्टि करदे और नूतन;
प्रेरणा दे, वह कला हू !

प्यार का संसार लाने,
शांति का उपहार लाने,
है युगों से व्यस्त जीवन, ध्येय को कर पूर्ण अर्पण
साधना में ही पला हूँ !

जो विघातक नीति जग की,
स्वाँग की जो प्रीति जग की,
आज इनको नष्ट करने का किया है प्रण हृदय से,
ज्वाल रक्षा हित जला हूँ !

कवि

मैं विद्रोही कवि, मैं नवयुग
को निर्मित करने वाला हूँ !

मैं शिव बनकर सारी जर्जर
सृष्टि भस्म करने को आया,
बस मस्ती से कंटक-पथ
पर ही चलना मुझको भाया;
धधक उठी लपटें धू-धू कर
मेरे एकमात्र इंगित से,
अब मिट जाएगी दुनिया से
शोषक-वर्गों की छल-माया,
नष्ट-भ्रष्ट कर सारे बंधन
लाया नव-जीवन-ज्वाला हूँ !
मैं विद्रोही कवि, मैं नवयुग
को निर्मित करने वाला हूँ !

परिवर्तन का आकांक्षी हूँ
मन्थन कर सकता सागर का,
वह भीषण आँधी हूँ जिससे
कँपता वक्षस्थल अम्बर का,
मैं नवयुग का अग्रदूत हूँ
नई व्यवस्था का निर्माता,
मैं नव-जीवन का गायक हूँ
साधक अभिनव प्राणद-स्वर का
सजग-चितेरा नव-समाज को
मैं चित्रित करने वाला हूँ !
मैं विद्रोही कवि, मैं नवयुग
को निर्मित करने वाला हूँ !

मैं अजेय दुर्दम साहस ले
दृढ़ता से करता आन्दोलन,
थर-थर कँप जाता है जिससे
अवरोधी धरती का कण-कण
युग के अगणित संघर्षों में,
उलझा रहता मेरा जीवन
जिन संघर्षों से व्याकुल हो
मानव कर उठते हैं क्रंदन,

मैं इन संघर्षों से निर्भय,
वज्रों को सहने वाला हूँ!
मैं विद्रोही कवि, मैं नवयुग
को निर्मित करने वाला हूँ!

युग-कवि

मेरे भावों का वर्ग प्रखर,
मेरी कविता की पंक्ति अमर,
मेरी वीणा युग-वीणा है
कब मौन हुए हैं उसके स्वर ?
मैं गाता रहता प्रतिपल !

मेरे स्वर में है आकर्षण,
आकर्षण में जाग्रत जीवन,
जीवन में आशाऽकांक्षा का
रखता मादक नूतन यौवन,
करते जगमग लोचन निश्छल !

मेरा युग दीख रहा उज्वल,
नर्तन करते तारे झलमल,
जिसकी धरती पर बहती है
शीतल-धार-सुधा की अविरल,
छाए रहते जीवन-बादल !

संघर्ष

क्रांति-पथ पर बढ़ रहा हूँ
द्रोह की ज्वाला जगाने !

आज जीवन के सभी मैं
तोड़ दूँगा लौह-बंधन,
शोषितों को आज अर्पित
प्राण की प्रत्येक धड़कन
स्वत्व के संघर्ष में, मैं
पीड़ितों की जीत के हित
अब चला हूँ गीत गाने !
क्रांति-पथ पर बढ़ रहा हूँ
द्रोह की ज्वाला जगाने !

दुःख-गिरि के दृढ़-हृदय पर
आज भीषण वार करने
चल रहा है मन, भयंकर
मौत से व्यापार करने,
साथ मेरे चल रही हैं
घोर तूफ़ानी हवाएँ—
राह-बाधाएँ हटाने !
क्रांति-पथ पर बढ़ रहा हूँ
द्रोह की ज्वाला जगाने !

विश्व नूतन वेश लेगा
दीखता जो क्षुब्ध जर्जर,
दे रहा जिसमें सुनाई
सिर्फ क्रन्दन का करुण स्वर,
हूँ सतत संघर्ष रत मैं
रक्त से डूबी धरा पर
शांति, समता, स्नेह लाने !
क्रांति-पथ पर बढ़ रहा हूँ
द्रोह की ज्वाला जगाने !

मेरी आहें

मेरी आहें, मेरी आहें !

इनमें ज्वाला जलती अविरल,
इनमें तूफ़ानों-सी हलचल,
ये विप्लव करने को चंचल,
मेरी आहें, मेरी आहें !

इनमें भूचालों-सा कंपन,
हैं विद्रोही दुर्जय भीषण,
ध्वस्त सभी कर देंगी बंधन,
मेरी आहें, मेरी आहें !

पीड़ित जनता की हैं संबल,
स्वर्ग बना सकती हैं भूतल,
शस्त्रों से बढ़ रखती हैं बल,
मेरी आहें, मेरी आहें !

ये आहें हुंकार बनेंगी,
दानवता से आज लड़ेंगी,
'डरना मत', हर बार कहेंगी,
मेरी आहें, मेरी आहें !

चेतना

प्रति हृदय में शक्ति दुर्दम,
मूल्य अपना माँगता श्रम,
जागरण का भव्य उत्सव,
सृष्टि का सब मिट गया तम !

विश्व जीवन पा रहा है,
गीत अभिनव गा रहा ह,
कर्म का उत्साह-निर्झर
आज उमड़ा जा रहा है !

आज आगे मैं बढ़ूँगा,
आपदाओं से लड़ूँगा,
राह की दुर्गम सभी
ऊँचाइयों पर जा चढ़ूँगा !

तरुण

दुनियाँ के अगणित मुक्त-तरुण
बंधन की कड़ियाँ तोड़ रहे !

जनता ने युग ने करवट बदली
आज़ादी का मूल्य गहा,
जनता ने जाना सब पहचाना
'पशुबल का हो नाश', कहा !
जाग्रत मनुज लुटेरों के
गिरोह कच्चे-घट से फोड़ रहे !
दुनियाँ के अगणित मुक्त-तरुण
बंधन की कड़ियाँ तोड़ रहे !

सम्मुख विशाल चट्टानें आईं
पथ की बाधाएँ बन दुर्दम,
भीषण-शर के आघात हुए
नव-रूप मनुज पर छा निर्मम,
दानवता से जूझ रहे मानव,
दुख के बादल मोड़ रहे !
दुनियाँ के अगणित मुक्त-तरुण
बंधन की कड़ियाँ तोड़ रहे !

नारी

चिर-वंचित, दीन, दुखी बंदिनि !
तुम कूद पड़ीं समरांगण में,
भर कर सौगन्ध जवानी की
उतरीं जग-व्यापी क्रन्दन में
युग के तम में दृष्टि तुम्हारी
चमकी जलते अंगारों-सी,
काँपा विश्व, जगा नवयुग, हृत–
पीड़ित जन-जन के जीवन में !

अबतक केवल बाल बिखरे
कीचड़ और धुँए की संगिनि
बन, आँखों में आँसू भरकर
काटे घोर विपद के हैं दिन,
सदा उपेक्षित, ठोकर-स्पर्शित
पशु-सा समझा तुमको जग ने,
आज मभक कर सविता-सी तुम
निकली हो बनकर अभिशापिन !

बलिदानों की आहुति से तुम
भीषण हड़कम्प मचा दोगी,
संघर्ष तुम्हारा न रुकेगा
त्रिभुवन को आज हिला दोगी,
देना होगा मूल्य तुम्हारा
पिछले जीवन का ऋण भारी,
वरना यह महल नए युग का
मिट्टी में आज मिला दोगी !

समता का, आज़ादी का नव
इतिहास बनाने को आई,
शोषण की रखी चिता पर तुम
तो आग लगाने को आई,
है साथी जग का नव-यौवन
बदलो सब प्राचीन व्यवस्था;
वर्गभेद के बंधन सारे
तुम आज मिटाने को आई !

देश-दीपक

देश दीपक
स्नेह आहुतियाँ,
दमन की आँधियाँ
पर, लौ लहर कर व्योम में
बलती रहे, जलती रहे !

शीश बलिवेदी सतत चढ़ते रहे,
परतन्त्रता-युग-तम बदल जाए
प्रकाशित मुक्ति के सुंदर क्षणों में !
जीत के स्वर, शांति के स्वर,
और नव-निर्माण के स्वर
साधना चलती रहे, चलती रहे !

गुंजित गगन, मुखरित जगत् हो,
इंकलाबी दृढ़ दहाड़ें
चिह्न अन्यायी हुकूमत का मिटा दें,
त्याग का, बलिदान का,
नव-प्रेरणा का ज्वार ऐसा
जन समुन्दर में बहेगा जब
तभी यह क्राँति का इतिहास
निर्मित हो सकेगा !
तोड़ पाएगा तभी
परतन्त्रता की लौह-कड़ियों को
बँधा, जकड़ा हुआ यह राष्ट्र !

बुझ गया यदि देश-दीपक:
तो अँधेरा क्या
मरण-अभिशाप होगा !
लूट का आरम्भ होगा !
घोर शोषण की कहानी का
प्रथम वह पृष्ठ होगा !

इसलिए.....
बलिदान की है माँग,
आओ नौजवानो !
आज माता माँगती है
प्राण का उत्सर्ग !
धरती को बनाओ स्वर्ग !

बलिया

(१९४२ की क्रांति का जन-गढ़)

यह जन-गढ़ है अजितेजित-दुर्दम
है खेल नहीं टकराना,
इसने न कभी अत्याचारों
के आगे झुकना जाना !

हिमगिरि उच्च-शिखर-सा वसुधा
पर अविचल आज़ाद खड़ा,
पशुबल की 'गोरी' सत्ता से
क़दम-क़दम पर अड़ा-लड़ा !

मानवता का जीवित प्रतीक,
आज़ादी हित मतवाला,
पड़ न सकेगा इसके मुख पर
साम्राज्यवाद का ताला !

आज जवानों ने खोल दिए
हैं दृढ़ सीने फौलादी,
इनक़लाब के चरण थके कब
जब ज्वाला ही बरसा दी ?

तुम आँधी बन बढ़ते जाओ,
साहस से, उन्मुक्त-निडर,
तुम पर बंदी माँ की ठहरी
है रक्षा की आस अमर !

शोषित जन-जन साथ तुम्हारे,
है अगणित कंधों का बल,
शत-शत कंठों का विजयी-स्वर
गूँज रहा निर्भय अविरल !

खेतों-खलिहानों में गिरता
है जो शत्रु-रक्त तुम्हारा,
उससे फूटेगा आज़ादी
का नूतन कोपल प्यारा !

आगामी सदियाँ समझेंगी
उसको निज प्राणों की थाती,
रोज़ जलेगी उस धरती पर
बलिदानों की स्मृति-बाती !

प्रभंजन

आ रहा तूफ़ान है,
जीत का वरदान है,
शक्ति का ही गान है,

देश के अभिमान पर
प्राण का बलिदान है !
आ रहा तूफ़ान है !

स्वत्व का संग्राम है,
आज कब विश्राम है
युद्ध जब प्रतियाम है ?

गर्व मिथ्या नष्ट है,
स्वार्थ का क्या काम है ?
स्वत्व का संग्राम है !

विश्व में पाखंड जो,
द्वन्द्व है उद्दंड जो,
काँप रहा भूखंड जो,

अग्नि में सब जल रहा
हो रहा है खंड जो !
विश्व में पाखंड जो !

मुक्ति का उपहार है,
स्नेहमय संसार है,
शांति की झंकार है,

लूट, शोषण, नाश की
नीति पर अधिकार है !
मुक्ति का उपहार है !

क्रांति का इतिहास है,
पास में विश्वास है,
सृष्टि में मधुमास है,

विश्व की बढ़ती हुई
मिट रही अब प्यास है!
क्रांति का इतिहास है!

छिप चुके कटु शूल हैं,
खिल रहे मधु फूल हैं,
कौन जो प्रतिकूल है?

देख जीवन आज का
कह रहा जो, 'भूल है'!
छिप चुके कटु शूल हैं!

परिवर्तन हो !

परिवर्तन हो !
नव-जीवन हो !
जग के कण-कण में
जागृति का नव-कंपन हो !
युग युग के बाद उठें फिर से
उर सागर में लहरें सुख की,
स्रोत बहे जीवन का निर्मल !
जन-जन-मन
संसार सुखी हो !
आएँ मधु-क्षण
चिर वंचित संसृति में फिर से,

पात्र सुधा का भर-भर जाए,
मादक सौरभ,
सपने मीठे,
शांति मधुर हो,
दुनिया का उजड़ा, झुलसाया
सूखा उपवन
नन्दनबन हो !
परिवर्तन हो,
परिवर्तन हो !

नया सबेरा

सबेरा नया आ रहा है !

युगों का अंधेरा मिटाकर,
बड़ा लौह-परदा हटाकर,
सबेरा नया आ रहा है !

नई रोशनी में नहा कर,
पुराना गला सब बहा कर,
सबेरा नया आ रहा है !

नवल-शक्ति दुर्जेय भरता,
सबल शत्रु पर वार करता !
सबेरा नया आ रहा है !

मनुज को नए गान देता,
सरल स्नेह मुसकान देता,
सबेरा नया आ रहा है !

साधक

व्यर्थ सकल आयोजन, बाधक !
इनसे न रुका है, न रुकेगा
निर्झर-सा बहता दृढ़ साधक !
व्यर्थ सकल आयोजन, बाधक !

पथ पर छाई है बीहड़ता,
युग-जीवन में हिम-सी जड़ता,
पर पिघल सभी तो जाता है
साहस-ज्वाला का स्रोत अथक !
व्यर्थ सकल आयोजन, बाधक !!

मन की चट्टानों के सम्मुख,
हो जाते हैं तूफ़ान विमुख,
सदा जला है, सदा जलेगा
मानवता का मंगल-दीपक !
व्यर्थ सकल आयोजन, बाधक ! !

है मनुज तुम्हारी जय निश्चित,
क्षण-क्षण की सिहरन अपराजित,
परिवर्तन में हो जाएगा
प्रतिक्रियाओं का जाल पृथक !
व्यर्थ सकल आयोजन, बाधक ! !

तुलसीदास

ओ महाकवि !
गा गए तुम गीत जीवन के मरण के,
भाव-पूरक, मुक्त-मन के !
सत्य, शिव, सौन्दर्य-वाहक !
गीत जो अभिनव अमर
धरती-गगन के !
हैं अपार्थिव और पार्थिव
लोक के परलोक के !
साहस, प्रगति, नव-चेतना,

नव-भावना, नव-कल्पना
आराधना के गीत !
जिनमें गूँजता है प्राणमय संगीत—
मानव हो न किञ्चित देखकर तू
काल के निर्दय भयंकर रूप से भयभीत,
निश्चय मनुजता की लिखी है जीत !
ओ अमर साधक !
नई अनुभूतियों के देव,
तुमने जीर्ण-संस्कृति का किया उद्धार;
श्रद्धा से झुकाता शीश यह संसार !

छा रहा था भय
कि जब मानव भटकता था अँधेरे में,
विवशता के कठिन आतंक-घेरे में;
धुआँ चहुँ ओर झूठे धर्म का
जब घिर रहा था व्योम में,
औ' वास्तविकता जा छिपी थी
चक्र, कुण्डल, मंत्र, नाड़ी की
विविध निस्सार माया में,
भ्रमित था जग सकल
उलझी अनोखी रीतियों में,

तब उठे तुम
और तुमने थाह ले ली
पूर्ण 'मानस' भाव के बहते समुन्दर की !
किया विद्रोह अविचल,
बन गया जो त्रस्त, पीड़ित, नत
मनुजता का सबल संबल !

★

: २ :

महाकवि तुम, तुम्हारे गीत
सच, हम गा नहीं सकते !
अंधेरा छा रहा था जब कि तुम आये;
किन्तु
वह सारा धुँआ छलका
बिखर कर उड़ गया
ज्योंही तुम्हारे स्वर
गगन में मुक्त मँडराए !
कि तुमको देखकर
लाखों दुखी जन के नयन
सुख-वारि से भर डबडबाए !
आर उजड़े मग्न, हत, वीरान घर-घर में

नई आशा, नए विश्वास के दीपक
विपद् कर भंग
फिर से टिमटिमाए !
तुम्हारी ज्योति के सम्मुख
तिमिर-पट छा नहीं सकते !
महाकवि तुम, तुम्हारा गीत
सच हम गा नहीं सकते !
धरा पाकर तुम्हें जब मुसकराई थी
बड़े उत्साह से प्रति प्राण में
नव-चेतना आकर समाई थी !
तुम उसी जन-भावना के बन गए वाहक
अमर हे संत !
संस्कृति के विधायक,
हम तुम्हारी थाह जीवन में
कभी भी पा नहीं सकते !
महाकवि तुम, तुम्हारा गीत
सच हम गा नहीं सकते !

★★

प्रेमचंद

ओ कथाकार !
युग के सजग, मुखरित, अमिट इतिहास,
जन-शक्ति के अविचल प्रखर विश्वास !
द्रष्टा थे भविष्यत् के;
धनी भावों-विचारों के !
अमर शिल्पी
मनुज-उर के
अकृत्रिम, सूक्ष्म-विश्लेषक !

सितारे-तीव्र
मेघाच्छन्न जीवन के गगन के,
रूढ़ियाँ-बंधन शिथिल तुमने किए
अपनी अरुक, दृढ़ लेखनी के बल !
सभी ये थरथराईं
काल्पनिक, प्राचीन, झूठी, जन-विरोधी
धारणाएँ, मान्यताएँ;
धर्म-ग्रंथों से बँधी
निर्जीव, मिथ्या, शून्य की बातें
अनोखी, खोखली
जो हो रहीं थीं प्रगति-बाधक !
पतित साम्राज्यवादी-शक्तियों का
नग्न-चित्रण कर
बनाई भूमिका
जनबल अथक-संघर्ष की !

ओ अमर साधक :
सतत चिंतित रहे तुम
स्वर्ग धरती को बनाने !
अभय सामाजिक सुधारक,
युग-पुरुष !

तुमको, तुम्हारी ज्योति को
क्या ढँक सकेंगी काल-रेखाएँ ?
नहीं अब शेष साहस जो
अँधेरा सिर उठाए !
तुम प्रगति-पथ की
नई ज्योतित दिशा का
मार्ग-दर्शन कर रह हो !
प्राण में बल भर रहे हो !

गाँधी

मानव-संस्कृति के संस्थापक,
नव-आदर्शों के निर्माता,
आने वाली संसृति के तुम
निश्चय, जीवन भाग्य-विधाता !

सत्य, अहिंसा की सबल नींव
पर, सार्थक निर्मित किया समाज,
देश-देश में नगर-नगर में
गूँज उठी नयी-नयी आवाज़ !

सदियों की निष्क्रियता पर तुम
कर्मदूत बनकर उदित हुए,
विगत युगों के भौतिक-शृंग
तुम्हारी धारा से विजित हुए !

नैतिक-हीना सघन निशा में
ध्रुव दिया तुम्हींने सतत प्रकाश,
घिरे निराशा के घन में तुम
बने, भरदी तड़ित-चमक-सी आश !

★

: २ :

त्रस्त, दुर्बल विश्व को सुख, शक्ति के उपहार हो तुम !

मनुज जीवन जब जटिल, गतिहीन होकर रुक गया है,
शृंखलाएँ बंधनों की तोड़ता जब थक गया है,
दमन, अत्याचार, हिंसा से प्रकम्पित झुक गया है,
एक सिहरन, नव-प्रगति के, शांति के अवतार हो तुम !
त्रस्त, दुर्बल विश्व को सुख, शक्ति के उपहार हो तुम !

कर युगान्तर युग-पुरुष तुम स्वर्ण नवयुग ला रहे हो,
नग्न-पशुबल-कर्म गाथा तुम सुनाते जा रहे हो,
मुक्त बलिपथ पर निरन्तर स्नेह-कण बरसा रहे हो,
धैर्य, नूतन चेतना, उत्साह के संसार हो तुम !
त्रस्त, दुर्बल विश्व को सुख, शक्ति के उपहार हो तुम !

पीड़ितों, वंचित, दलित-जन के उरों में आश भर-भर
प्राणमय, संदेशवाहक, साम्य का नव-गीत गा कर,
मुक्त उठने के लिए तुम दे रहे हो पूर्ण अवसर;
देख मानवता जगी, दुर्जेय कर्णाधार हो तुम !
त्रस्त, दुर्बल विश्व को सुख, शक्ति के उपहार हो तुम !

★★

: ३ :

प्राची के उगे तुम सूर्य
सहसा बुझ गए !
पर, तुम्हारी
फैलती ही जा रही है ज्योति !
दिग-दिगन्तों में समा,
अति शीत ईथर के
असीमित तम किनारों तक,
कि मन की सूक्ष्मतम सब
घाटियों के अंध तम से बंद
पट ज्योतित !
तुम्हारी दिव्य शाश्वत
आत्मा के तेज से

ये धुल गए
जीवन-मलिनता के
अशिव सब भाव !
युग-युग की दबी
खंडित धरित्री पर
गई बह सत्य-अमृत धार !!
तुमने कर दिया
उपचार घावों का,
मनुजता के सभी
आधार दावों से !
जगत को कर दिया आश्वस्त
देकर मुक्त विश्व-विधान,
जो सुखमय भविष्यत् का
अमर वरदान !

★★★

: ४ :

तुमने बुझते
युग-मानव के उर दीपक में
निज जीवन का संचित स्नेह ढाल
अभिनव ज्योति जगाई है !
पर, उस दिन को जोह रहे हम
जब कह पाएँ
किरणों की आभा में जिसकी
सुंदर जगमग झाँकी भव्य सजाई है !
मानवता की मानों हुई सगाई है !
नव-मानव शिशु को तुमने जन्म दिया,
जीने का अधिकार दिया,
निर्मल सुख शांति अमर उपहार दिया,

होठों को निश्छल मुक्त हँसी का
वरदान दिया,
कोटि-कोटि जन को रहने को
आज़ाद नया हिन्दुस्तान दिया !
जिसके नभ के नीचे
सत्य, अहिंसा का नूतन फूल खिला,
फैली बर्बर जर्जर संस्कृति के भीतर
ज्ञान-सुगन्ध हवा;
जिसने पीड़ित जन-जन का ताप हरा !
तुमने भर ली अपने उर में
युग की सारी मर्म व्यथा !
जिसको क्षण भर देख लिया केवल
उसने समझा अब जीवन पूर्ण सफल !
याद तुम्हारी शोषित दुनिया का संबल !
एक दिवस उड्डेगा निश्चय
सोया, भूला समुदाय
तुम्हारा ही प्रेरक-स्वर सुनकर !

: ५ :

आज हमारी श्वासों में जीवित है गाँधी,
तम के परदे पर मन के ज्योतित है गाँधी,
जिससे टकरा कर हारी पशुता की आँधी !

सिहर रही हैं गंगा, यमुना, झेलम, लूनी,
प्राची का यह लाल सबेरा लख कर खूनी,
आज कमी लगती जग को पहले से दूनी !

पर, चमक रही है मानव आदर्शों की ज्वाला,
जिसको गाँधी ने तन-मन के श्रम से पाला,
हर बार पराजित होगा युग का तम काला !

बुझ न सकेगी यह जन-जीवन की चिनगारी,
बढ़ती ही जायेगी इसकी आभा प्यारी,
निश्चय ही होगी वसुधा आलोकित सारी !

मिट नहीं सकते कभी हम,
त्याग हम में है अपरिमित,
बाहुओं में बल अमित,
उद्घोष करते हैं—
अमर मालव, अमर भारत !
अजय मालव, अजय भारत ! !

खेतिहर

खेत–बीच-बीच में फूस की पुरानी जर्जर झोंपड़ियाँ दिन का जलता हुआ तीसरा प्रहर। किसान गुनगुनाता है—

उठाओ हल, चलाओ हल !
कि गरमी पड़ रही बेहद

आकाश की ओर देखकर—

आज आकर ही रहेंगे
मेंह के बादल !
चलाओ हल, चलाओ हल !

पत्नी से—

चलो तुम भी
उगानीं है अरे मक्का,
अकेले बन न पाएगा
तुम्हारा चाहिए धक्का !

पत्नी हैरान-सी होकर—

मगर बिटिया
पड़ी बीमार है ज्वर से,
तुम्हें यह सूझता है क्या ?
दिखाई भी नहीं देता
कि वह बेहोश सी कैसी
पड़ी चुपचाप
बोलो किस तरह उसको
अकेली छोड़कर जाऊँ ?
चढ़ाना है तुम्हें परसाद माता का
कहीं से आज पैसे चाहिए ही,
खेत को छोड़ो
कहीं से दाम का ऐसी जुगत सोचो
कि देवी पा सकें अब भेंट !

किसान—

बढ़ता जा रहा है ब्याज,
दस से सौ रकम हो
हो गई है आज !
पटवारी हमारे खेत पर हावी,
फ़सल सारी उसी ने ली

कराकर कोठरी खाली !
खड़े हैं हम लुटा कर घर,
भरे ये हाथ अपने झाड़कर !
फिर भी न देगा आज कोई भी
हमें टुकड़े ज़रा से हाय ताँबे के,
वही तो धर्म का अवतार पटवारी
बताता है स्वयं को जो
भयंकर रूप धारण कर
हमें दुतकार देता है,
नहीं है आस कोई आज ऋण देगा !

बिटिया —

अरे हा !
माँ लगी है भूख
क्या होगा बचा कुछ दूध ?

शांति । बिटिया दूध का अभाव समझकर धीमे से—

पानी ही पिला दे, माँ !

माँ पानी देती है । किसान आवेश और दृढ़ता के स्वर में—

अभी लाया रुको जी दूध....!

विवशता के कारण कंठावरोध । पार्श्व-ध्वनि—

मेहनतकश उठो !
बलवान हो तुम,
हल चलाकर ही
उगा सकते अभी सोना,
मिटा दो आतताई का
सभी मिथ्या भरा टोना,
अटल विश्वास जीवन में
तुम्हारा हो सदा संबल,
उठाओ हल, चलाओ हल !

किसान चकित सा—

धरती गा रही है गीत !
सुनता हूँ नया संगीत !
चलाओ हल,
चलाओ हल !

खेतों में

हरे-हरे खेतों से परिपूर्ण एक पहाड़ी ढाल। पास ही एक छोटी, सँकरी नदी बह रही है; जिसके दोनों किनारों पर सघन पेड़ों की कतारें हैं। सामने के भरे हुए खेतों में छः छः युवतियों की दो पंक्तियाँ हाथ में हँसिए लिए दिखाई देती हैं और पहली कतार एक स्वर में गाती है।

पहली कतार -

आओ सखी, आओ सखी, आओ !
हरे हैं खेत
हरा है मन
भरा यौवन !
चलो री सखि !
शिखर पर चढ़
खुशी के ज़िन्दगी के, आश के गाने
पवन के साथ मिलकर
दूर तक विस्तार कर स्वर प्राण का गाएँ !
नयन में
फूलती-फलती धरा का स्वप्न भर लाएँ !

दूसरी कतार —

आओ सखी, आओ सखी, आओ !
सुनो, ये खेत हमसे कह रहे हैं क्या ?
हिलाकर शीश,
ये संकेत समझो दे रहे हैं क्या ?
हरे हैं ये
भरे हैं ये,

एक पल रुक कर —

पर, न जाने क्यों डरे से ये ?

खेतों में से अदृश्य पुरुष का स्वर —

सुनो, सुनो, सुनो,
सुनो, सुनो, सुनो,
चोर डाकुओं से सावधान !
कर रहे कि जो
हरे-भरे चमन मसान !
दैत्य से किसान
सावधान, सावधान !

दोनों कतारों की स्त्रियाँ हँसिए को शत्रु पर प्रहार करने की मुद्रा में

कौन है ? कौन है ? कौन....है ?

अदृश्य पुरुष - -

तमाम ये ज़मींदार,
औ' महाजनी प्रहार
टूटने को हो रहे तयार !

किसान- -

पहला—*पर, हमें है भय नहीं इसका,*
संगठित हैं हम !
दूसरा -*ज़माने को बदलने के लिए,*
तीसरा -*पीड़न और अत्याचार का साम्राज्य*
धरती पर सुलाने के लिए !
समवेत -*संगठित हैं हम !*
संगठित हैं हम ! !

यकायक खेत लहलहाने लगते हैं। पृष्ठभूमि में वृद्ध किसानों की छायाएँ नज़र आती हैं, जिनके हाथों में हँसिए कुदाली, गेहूँ की बालें और झण्डे हैं।

पृष्ठ भूमि का समवेत स्वर - -

माना, भार गुलामी का बरसों ढोया,
पर, जाग नहीं क्या दाग़ पुराना धोया ?
अब तो हमने सोना बोया,
जीवन का दुख सारा खोया !

★★★

अभियान

हज़ारों सुसज्जित सैनिकों का समूह। सभी हाथों में बन्दूक लिए हुए हैं। सभी की आँखें लाल हैं। एक घुड़सवार तेज़ी से आता है और बिगुल बजाता है। बिगुल के बन्द होते ही स्टेज के पीछे से गान की सशक्त ध्वनि आती है। सैनिक सावधान होकर सुनते हैं।

अभियान करो !
अभियान करो !
किरणें जैसे गिरतीं तम पर,
बहती धारा जैसे बढ़ कर,
वैसी दुर्दम दृढ़ शक्ति लगा
चिर शोषित जनता को आज जगा,

व्यूह रचो,
अभिनव व्यूह रचो !

भक्षक संस्कृति की छाती पर
फौलादी आज क़दम रखकर
निर्भय हो भीषण अभियान करो !
युग-युग की पीड़ित जनता का
त्राण करो !

दुख, दैन्य, निराशा, जड़ता, तम
जीवन का सब आज हरो !
अभियान करो,
अभियान करो !

स्वर बन्द हो जाता है। एक क्षण सन्नाटा रहता है। दो-एक सैनिक उत्साहित हो कह उठते हैं

भरता साहस विद्युत जैसा
किसने आह्वान किया ऐसा !

अन्य सैनिक

क्या परिवर्तन की बेला ?
क्या नव-जीवन की वेला ?
बदलेगा क्या जीवन का क्रम ?

है सत्य,
नहीं यह किञ्चित भ्रम !
दूर क्षितिज पर
लपटें उठतीं,

सभी सैनिक क्षितिज की ओर देखते हैं और स्वीकृति के स्वर मे उत्तर देते हैं ।

हाँ, दीख रही हैं
बढ़ती-बढ़ती !
बादल मटमैले धूला के
दिशा-दिशा में फैल गए हैं !
आओ बढ़कर अभियान करो,
हिम्मत से दृढ़ व्यूह रचो,
गतिरोधी ताक़त से न डरो,
न डरो !

अभियान करो,
अभियान करो !

समवेत

दुश्मन पर,
आज विपक्षी पर,
जन-द्रोही पर,
अभियान करो,
अभियान करो !

महेन्द्र भटनागर विरचित अन्य साहित्य

न ई चे त ना

प्रस्तुत पुस्तक मानवता को, भावों की, बहुत बड़ी देन है— आदमी के सुख-शान्ति के भवन की मज़बूत नींव है। 'नई चेतना' हिन्दी-कविता मे युगान्तर उपस्थित करती है। इस संग्रह के एक एक शब्द में कवि की आत्मा का तेज निहित है। पैंतालीस कविताएँ इसमें संग्रहीत की गई हैं। कोई भी भाषा ऐसी सशक्त, जीवनदायी, तथा प्रेरक कृति पर गर्व कर सकती है। वर्तमान भारत को समझने के लिए 'नई चेतना' दर्पण का काम करेगी। मनुष्य के हृदय और मस्तिष्क में तूफ़ान पैदा करने वाली, तथा मनुष्य को मनुष्य से प्यार और स्वाभिमान से सम्बन्ध स्थापित कराने वाली यह कृति छप गई है। बढ़िया छपाई तथा आवरण। मूल्य २)

हिन्दी के प्रथम-श्रेणी के साहित्यकारों के कुछ मत —

(१) 'नई चेतना' मे महेन्द्र भटनागर ने नव-जाग्रत देश की कितनी ही उमंगों और आवश्यकताओं का अच्छा चित्रण किया है। कवि को इस सफलता के लिए साधुवाद।

—राहुल सांकृत्यायन

(२) श्री महेन्द्र भटनागरजी की नन्ही क़लम के ये प्रखर गीत नई चेतना के सजग प्रहरी निर्माण करने मे स्फूर्ति दे सकें यह मेरी कामना है।

माखनलाल चतुर्वेदी

(३) 'नई चेतना' में कवि के उद्‌गार सशक्त और उसकी भावना उच्चकोटि की संवेदना समन्वित है। उसकी शैली में सरलता के साथ अभिव्यंजना का अच्छा सामर्थ्य झलकता है।

—नंददुलारे वाजपेयी

(४) मैं 'कवि' नहीं हूँ कि किसी 'काव्य' के बारे में कुछ कह सकूँ। जितनी रचनाएं मैंने देखीं वे मुझे अच्छी लगीं। जन-साधारण को यदि कोई रचना 'प्रिय' लगे और उसे 'श्रेय' की ओर ले जाय तो यह उसके लिए बड़े-से-बड़ा सार्टिफिकेट है।

—आनन्द कौसल्यायन

(५) श्री महेन्द्र भटनागर नई पीढ़ी के प्रभावशाली कवि हैं। उनकी भाषा सरल और भाव मार्मिक होते हैं। उनमें एक तरफ जनता के दुख-दर्द से गहरी सहानुभूति है तो दूसरी तरफ उसमें संघर्ष और विजय में दृढ़ विश्वास भी है। आशा और उत्साह उनकी कविता का मूल स्वर है। युवकों में उनकी रचनाएँ विशेष लोकप्रिय हुई हैं।

—रामविलास शर्मा

●

टूटती शृंखलाएँ

प्रस्तुत पुस्तक में कवि महेन्द्र की ६० कविताएँ संग्रहीत हैं। 'टूटती शृंखलाएँ' हिन्दी साहित्य में विशिष्ट स्थान रखती है। कला-सौष्ठव की दृष्टि से, प्रगतिशील कविता में, 'टूटती शृंखलाएं' महत्वपूर्ण प्रकाशन है। आकर्षक गेट-अप। पृष्ठ १०४। डिमाई आकार।

मूल्य ११।।

निम्नलिखित कुछ सम्मतियाँ प्रस्तुत पुस्तक का यथार्थ मूल्यांकन कर देती हैं—

महेन्द्र की आतुर निर्भीक व्यंजना तथा कलात्मक गढ़न, प्रगतिशील काव्य के स्वर्णिम भविष्य की ओर संकेत करती है। 'टूटती शृंखलाएं' संक्रमण-युग के युगान्तरकारी काव्य की भूमिका बनकर आई है।

— डॉ. शिवमंगलसिंह 'सुमन'

'टूटती शृंखलाएँ' में व्यक्ति का वह अहं नहीं है जो कला की उपयोगिता को कला ही के लिए मानता हो, समाज जिसके लिए गौण हो। अनेक रचनाओं में समाज की पीड़ा जीवित होकर बोल उठी है; जन-शक्ति का एक व्यापक विश्वास कवि की नसों में उफन रहा है। × × मुक्तकों में प्रौढ़ता है— विचारों के संगठन में भी और कविता के निखार में भी।

'हंस'

कविका भावालोक मानसिक आत्मपीड़न और बौद्धिक कुंठा का शिकार नहीं है। उसकी चेतना नए विश्वासों की धड़कनों से उल्लास-विह्वल है।

—'जनयुग' में राजीव सक्सेना

इन कविताओं में कवि ने विराट स्वप्न नहीं, बल्कि समाज के कठिन संघर्ष व्यक्त किए हैं, जिनमें इस तरुण कवि की वाणी ने अनेक सुन्दर रूप लिए हैं। अनेक स्थलों पर कवि जन-शक्ति के प्रति जागृत भावना को इतना भाषा सौष्ठव सौंप देता है कि उसका वेग अप्रतिहत हो जाता है।

—'नया पथ' में आदित्य मिश्र

कवि के पास न केवल नवीन और स्वस्थ विचार-सरणि तथा जीवनोन्मुख वस्तु-विधान है वरन् उसमें अंकन की भी एक अद्भुत क्षमता विद्यमान है।

—'अवन्तिका' में रामेश्वर शर्मा

कवि के पास ओजस्वी शैली है। ओज और उत्साह, रोष और आक्रोश के साथ वह गाता है। भाव-प्रकाशन में वह सफल हुआ है। इसमें प्रयोगवादी ढंग की कुछ चित्र-रेखाएं भी हैं।

—'साहित्य-संदेश' में डॉ. सुधीन्द्र

कविताएं यथार्थ में सिर्फ टूटती हुई शृंखलाओं का ही नहीं बल्कि आगत युग के स्वस्थ व सबल स्वर को भी भली-भाँति प्रतिध्वनित करती हैं।

—नया समाज

कवि में अदम्य उत्साह और अटूट विश्वास है। वह जीवन को मंगलमय बनाना और देखना चाहता है। उसकी भाषा सशक्त और भाव स्पष्ट हैं। कविताओं में जीवन का एक नया दृष्टिकोण मिलता है।

—'सम्मेलन-पत्रिका' में देवदत्त शास्त्री

★★

बदलता युग

तैंतालीस राष्ट्रीय-जनवादी कविताओं का संग्रह
पृष्ठ ७५ । आकर्षक मुख-पृष्ठ । मूल्य १॥)

कुछ-सम्मतियाँ

' बदलता युग ' की कविताएँ देख गया हूँ । बहुत अच्छी लगी हैं । आपकी कविताओं में युग की चेतना स्पष्ट हुई है ।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी

कवि महेन्द्र भटनागर की सरल, सीधी ईमानदारी और सचाई पाठक को बरबस अपनी तरफ खींच लेती है । प्रयोग के लिए प्रयोग न करके, अपने को धोखा न देकर और संसार से उदासीन होकर संसार को ठगने की कोशिश न करके इस तरुण कवि ने अपनी समूची पीढ़ी को ललकारा है कि जनता के साथ खड़े होकर नई ज़िन्दगी के लिए अपनी आवाज़ बुलन्द करे ।

महेन्द्र भटनागर की रचनाओं में तरुण और उत्साही युवकों का आशावाद है, उसमें नौजवानों का असमंजस और परिस्थितियों से कुचले हुए हृदय का अवसाद भी है । इसीलिए कविताओं की सचाई इतनी आकर्षक है । यह कवि एक समूची पीढ़ी का प्रतिनिधि है जो बाधाओं और विपत्तियों से लड़कर भविष्य की ओर जाने वाले राजमार्ग का निर्माण कर रहा है ।

महेन्द्र भटनागर की कविता सामयिकता में डूबी हुई है । वह एक ऐसी जागरूक सहृदयता का परिचय देते हैं जो अशिव और असुन्दर के दर्शन से सिहर उठती है तो जीवन की नयी कोंपलें फूटते देखकर उल्लसित भी हो उठती हैं ।

कवि के पास अपने भावों के लिए शब्द हैं, छंद हैं, अलंकार हैं । उसके विकास की दिशा यथार्थ जीवन का चितेरा बनने की ओर

है। साम्प्रदायिक द्वेष, शासक-वर्ग के दमन, जनता के शोक और क्षोभ के बीच सुन पड़ने वाली कवि की इस वाणी का स्वागत—

"जो गिरती दीवारों पर नूतन जग का सृजन करे
वह जनवाणी है !
वह युगवाणी है !!

—डॉ. रामविलास शर्मा

महेन्द्र भटनागर की कविताओं में आवेग है और ओजस्वी व्यंजना। आज के अव्यवस्थित जीवन के हर विरूप पहलू के प्रति उनके प्राणों में बगावत का तूफ़ान बज रहा है जो निर्भीक सचेष्ट क़लम की नोक पर थिरक उठता है। 'बदलता युग' में मानवता की करुणा पुन्जीभूत हुई-सी लगती है। जब-जब ह्रासोन्मुख समाज के आचार-अनाचार के दयनीय दृश्य उपस्थित होते हैं, इस तरुण कवि के भीतर का तकाज़ा अधिक दुर्दम्य, कठोर और आत्मवेदन से आलोड़ित होकर प्रकट होता है।

शचीरानी गुर्टू

'बदलता युग' की कई कविताएँ मुझे बहुत पसन्द आईं और मैं समझता हूँ कि आप प्रगतिवादी धारा को पुष्ट कर रहे हैं।

—मन्मथनाथ गुप्त

'बदलता युग' में कवि श्री महेन्द्र भटनागर ने हमारी आँखों से गुज़रते भारत के जीवन और समाज को काव्यमयी वाणी में ईमानदारी के साथ सामने रखा है।

—शिवनाथ

इस संग्रह की रचनाओं में युवकोचित ओज, आवेग, आक्रोश के साथ एक प्रकार की गौरवमय पावनता के भी दर्शन होते हैं। अनेक स्थलों पर भाषा परिमार्जित एवं सौष्ठवमयी होने के साथ-साथ प्रवाहपूर्ण है।

—सम्मेलन-पत्रिका (प्रयाग)

चाँद, मेरे प्यार !

इस संग्रह में कवि महेन्द्र के सत्ताईस मधुर गीत संग्रहीत हैं—जिनका गगन-चुम्बी उड़ान देखते ही बनती है ! संयोग और वियोग पक्ष की मर्मस्पर्शी अभिव्यक्ति समस्त गीतों में पायी जाती है। कवि ने नई-नई कल्पनाओं को मूर्त-रूप प्रदान किया है। आधुनिक हिन्दी-कविता में इतने संयमित प्रेम-गीत बहुत-कम लिखे गए हैं। प्रस्तुत संग्रह के अनेक गीत आपने भारत के विभिन्न आकाशवाणी-केन्द्रों से प्रसारित होते हुए सुने होंगे।

दुरंगी छपाई ! प्रत्येक गीत के भावों के आधार पर एक-एक रेखाचित्र ! अत्यधिक आकर्षक आवरण ? मूल्य २)

तारों के गीत

इस पुस्तक मे कवि महेन्द्र के इक्कीस गीत संकलित हैं जिनमें 'विविध उद्वेग और रागों का अच्छा रंग उभरा है और वर्तमान मे उत्साह और दृढ़ता के भाव के भाव के लिए प्रेरणा भी प्रस्तुत हुई।'

—डॉ. सत्येन्द्र

'कवि के ये गीत अनेक मौलिक उद्भावनाओं से पूर्ण हैं।'

—साहित्य-संदेश

'तार के माध्यम से कवि महेन्द्र ने भावों में वैचित्र्य का सुषमामय ऐश्वर्य दिया है !' —हंसकुमार तिवारी

'भाषा और छंदों मे पर्याप्त प्रवाह है !' —धर्मवीर भारती

'तारों पर उदित भिन्न-भिन्न प्रकार के भावों की यह सुन्दर चित्रशाला है !' —रामचरण महेन्द्र

गीतों की सजावट और मुख-पृष्ठ बहुत ही कलापूर्ण ! पृष्ठ ४९। एन्टिक कागज़। मूल्य ।।।) मात्र।

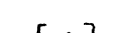

***

व्यक्तिगत अनुभूतियों के गीतों एवं प्रकृति-चित्रों की नवीन शैली की कविताओं का संग्रह

अन्तराल

(प्रेस में)

" अन्तराल की अधिकांश कविताओं में गीतात्मकता पायी जाती है। कवि अपनी प्रवृत्तियों में उन्मुक्त है, वह अपनी अन्तर-अनुभूति के प्रति जितना ईमानदार है उतना ही अपने से बाहर होने वाले सामाजिक चढ़ाव-उतार के प्रति सजग है। इसीलिए वह जहाँ व्यक्ति-प्रेम के गीत गाता है वहाँ समाज के उत्पीड़न को देखकर चीत्कार भी कर उठता है। कवि ने अपने को छायावादी कुहासे से सर्वथा बचा लिया है। इसीलिए हम उसको बहुत स्वष्ट रूप में देख सकते हैं—समझ सकते हैं। सहज सारल्य उसके जीवन का आकर्षण है। बाह्य-सृष्टि-प्रकृति को उसने निर्मल और स्वस्थ दृष्टि से देखा है। यहीं उसके ज्ञान और गान का मधुर सम्मिलन हो गया है। "

-आचार्य विनयमोहन शर्मा 'भूमिका' में

ल ड़ ख ड़ा ते क़ द म

ग्यारह यथार्थवादी कहानियों-स्केचों का संग्रह

म. भा. कला परिषद् द्वारा पुरस्कृत

" इसमें लेखक ने वर्तमान यथार्थ का चित्रण सुन्दर ढंग से किया है। कहानियों में रवानी है और विचारों में तेज़ी। "

गुलाबराय

लेखक की कृति के पीछे एक निश्चित उद्देश्य है। गंभीर लेखन के साथ ही साथ विनोदपूर्ण और व्यंग्यात्मक रचनाएं लिखने की क्षमता भी लेखक में है।

आकाशवाणी केन्द्र, नागपुर

***